इकाई 18 मेजी जापान I

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम जापान के विदेशी संबंधों के उन मसलों पर विचार विमर्श करेंगे, जिनका सामना मेजी शासन ने 1868-1893 की अवधि में किया। इस इकाई को पढ़ने के बाद आपको निम्न बातों की जानकारी हासिल होगी :

- कूरिल द्वीप समूह, र्‍यूक्यू द्वीप समूह और बोनिन द्वीप समूह से संबंधित क्षेत्रीय मुद्दे,
- कोरिया से चीन का प्रभुत्व समाप्त करने के जापान के प्रयास, और
- असमान संधियों में संशोधन।

18.1 प्रस्तावना

मेजी शासन को विरासत में ऐसा देश (जापान) मिला था जो पश्चिमी देशों के लिए ऐसी संधियों के आधार पर खुला था, जिनमें जापान में विदेशी नागरिकों को क्षेत्रातीत (देखिये शब्दावली) अधिकार दिये गये थे, और जापान को शुल्क दरों को तय करने की स्वायत्तता से भी वंचित कर दिया गया था। पश्चिमी राष्ट्रों के साथ जापान को समानता का दर्जा दिलाने के लिये यह आवश्यक हो गया था कि जापानी प्रभुसत्ता में पैठ करने वाले इन अपमानजनक प्रावधानों को रद्द किया जाये। इसके लिये न केवल आंतरिक पुनर्निर्माण के एक कार्यक्रम की आवश्यकता थी, बल्कि यह भी आवश्यक था कि जापान द्विपक्षीय और बहुपक्षीय स्तरों पर बातचीत में भी निपुण बने रूस के साथ लगने वाली उत्तरी सीमाओं की समीक्षा और जापान के हित में उन्हें निश्चित करना आवश्यक था। जापान ने र्‍यूक्यू द्वीप समूह पर अपनी प्रभुसत्ता कायम करने का प्रयास किया-और इसे स्वीकृत भी कराना चाहा। कोरिया खोलने के जापान के प्रयासों को नाकाम करने की कोरिया की जिद को भी ठीक करना था। जिस जापान ने पश्चिमी ताकतों के खतरे का मुकाबला करने के लिये 1871 में चीन के साथ एक मैत्री-संधि की थी, उसी जापान को र्‍यूक्यू द्वीप समूह और कोरिया को लेकर चीन के साथ अपने हित टकराते दिखायी दिये। जिस कोरियन अभियान का साइगो-ताकायोरी ने प्रारंभ में प्रस्ताव रखा था, 1873 में वह अभियान तो शुरू नहीं हुआ, लेकिन जापान ने अपने अधिकारों को कायम करने के लिये कोरिया के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप अवश्य किया। इन दोनों मुद्दों ने चीन और जापान के बीच अविश्वास और शत्रुता पैदा कर दी, जो आने वाले वर्षों में और बढ़ी ही। अमेरिका ने चीन के संदर्भ में जापान के अधिकारों को कायम करने और सामान्य तौर पर जापान के क्षेत्रीय विस्तार के प्रयासों में जापान की अप्रत्यक्ष रूप से मदद की। इस इकाई में इन्हीं कुछ बिंदुओं पर विचार किया गया है।

18.2 क्षेत्रीय मुद्दे

अब हम उन क्षेत्रीय मुद्दों पर विस्तार से विचार विमर्श करेंगे जो जापान के सामने थे। इनमें कूरिल द्वीप समूह, र्‍यूक्यू द्वीप समूह और बोनिन द्वीप समूह शामिल हैं।

18.2.1 कूरिल द्वीप समूह

फरवरी 1855 में रूस के साथ जो शिमोदा की संधि हुई वह अमेरिका के साथ हुई संधि से इन अर्थों में कहीं अधिक व्यापक थी कि इसमें कुछ क्षेत्रीयता से संबंधित प्रावधानों को भी शामिल किया गया। इनके अनुसार उरूप्पू के दक्षिण में पड़ने वाला समूचा कूरिल द्वीप तो जापान को मिला, और इसके उत्तर में पड़ने वाले द्वीप रूस के हिस्से में आये। सखालीन को अविभाजित ही रखा गया। लेकिन, इस संधि से भी सीमा का मसला हल नहीं हुआ। 1859 में, एक जहाजी बेड़े के साथ शिनागावा जाने वाले कांउट मुरावीफ ने एक मांग रखी कि ला पेरू जलडमरूमध्य को जापान और रूस की सीमा बनाया जाये। 1861 में, महत्वपूर्ण त्सूशीमा-द्वीप पर रूस ने कब्जा कर लिया। लेकिन ब्रिटेन ने इस द्वीप पर रूस के सारे दावे खत्म करवा लिये। इस तरह, रूस के साथ सीमाओं को उचित ढंग से खींचना नये मेजी शासन की विदेश नीति की एक प्रमुख समस्या बन गयी।

पुनरुत्थान के बाद के वर्षों में उत्तरी सीमा के बारे में नेताओं की राय एक नहीं रही :

1) नेताओं के एक गुट की राय थी कि जापान को समूचे कूरिल द्वीप समूह और सखालीन समेत सभी उत्तरी द्वीपों पर अपना दावा पेश करना चाहिये। 1870 में अमेरिकी विदेश मंत्री, विलियम एच. सेवर्ड, टोक्यो आये। उनका सुझाव था कि जापान सखालीन के उत्तरी आधे भाग को खरीदने की पेशकश कर सकता था। सेवर्ड ने जापान से आग्रह किया कि वह विस्तार की नीति अपनाये। सेवर्ड ने यह सलाह रूस के साथ अपनी बातचीत और अलास्का की खरीद (1887) के आधार पर दी।

ii) होकैडो कोलोनाईजेशन ऑफिस के अध्यक्ष, कुरेदा कियोताका के नेतृत्व वाले एक और गुट का मानना था कि होकैडो पर जापान का कब्जा अभी तक तो मजबूत हुआ नहीं था, इसलिए बड़े दावे करके रूस का बैर मोल लेना अक्लमंदी नही होगी। होकैडो की सैनिक शक्ति उत्तर से होने वाले आक्रमण से द्वीप की रक्षा करने की स्थिति में नहीं थी। प्राथमिकता विस्तार को नहीं, बल्कि इस बात को देनी चाहिए कि होकैडो में जापान की स्थिति को मजबूत किया जाये। कियोताका इस बात की वकालत करता था कि जापान सखालीन पर अपने सभी दावे छोड़ दे। अंत में उसके विचार ही माने गये।

एडमिरल एनोमोती ताकेयाकी को 1874 में इस निर्देश के साथ सेंट पीटर्सबर्ग भेजा गया कि वह रूसी-जापानी सीमा समस्याओं पर सौहार्दपूर्ण बातचीत करके उनका समाधान करे। लंबी बातचीत के साथ, 1875 में, पीटर्सबर्ग की संधि संपन्न हुई। रूस ने कूरिल द्वीप शृंखला जापान के लिये छोड़ दी। इसके बदले में जापान ने सखालीन पर अपने सारे दावे छोड़ दिये। **जापान की समानता के आधार पर संपन्न होने वाली यह पहली अंतर्राष्ट्रीय संधि थी।** कूरिल द्वीप सामरिक दृष्टि से जापान के लिये अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण महत्वपूर्ण थे और आर्थिक-दृष्टि से इसलिये महत्वपूर्ण थे क्योंकि उसके आसपास के जलक्षेत्र में मछलियों की बहुतायत थी।

कूरिल द्वीपों को होकैडो में मिला लिया गया और उनका प्रशासन होकैडो प्रांत के एक हिस्से के तौर पर होता था। इस संधि का संपन्न होना जापान के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ क्योंकि इसके तहत चिंतनीय सीमा विवाद सौहार्दपूर्ण ढंग से निपट गया। इसके अलावा, जापानी नेताओं के लिये अंतर्राष्ट्रीय बातचीतों के क्षेत्रों में यह एक महत्वपूर्ण अनुभव भी रहा लेकिन, रूस के साथ जापान की मैत्री जल्दी ही कोरिया को लेकर टूट गयी, तथा इसका कारण पूर्व में एक हिममुक्त बंदरगाह हासिल करने की रूसी महत्वकांक्षा भी थी।

18.2.2 र्‍यूक्यू द्वीप समूह

र्‍यूक्यू द्वीप दक्षिण की दिशा में, क्यूशू के नीचे, 5 मील तक फैले हुए हैं। र्‍यूक्यू में रहने वालों की भाषा और रीतियाँ चीनियों और जापानियों दोनों से मेल खाती थीं, लेकिन जापान के अधिक निकट थी। सत्रहवीं शताब्दी तक, ये द्वीप प्रमुख तौर पर चीनी प्रभाव में थे। लेकिन, सत्रहवीं शताब्दी के बाद, उन्हें सत्समा हान के काईम्यो ने जीत लिया। इसका

परिणाम केवल यह हुआ कि र्‍यूक्यू द्वीप समूह का राजा चीन और जापान दोनों को नजराना देने लगा और दोनों के साथ सक्रिय व्यापार करता रहा। लेकिन राजा अपने आपको स्वाधीन ही मानता रहा और उसने अपनी ही ओर से पश्चिमी ताकतों के साथ संधियों पर हस्ताक्षर किये। जापान में जब (1882 तक) हान का खात्मा कर दिया गया तो, र्‍यूक्यू द्वीपों की स्थिति को स्पष्ट करना आवश्यक हो गया। जापानियों ने यह निश्चित करने के लिये कदम उठाये कि र्‍यूक्यू द्वीपों पर चीन के दावे को नहीं माना जाए। राजा को जबरन टोक्यो ले आया गया और 1872 में अमेरिका को सरकारी तौर पर यह सूचना दे दी गयी कि र्‍यूक्यू द्वीपों को जापान में शामिल कर लिया गया था लेकिन राजा ने जो संधियाँ की थीं, उनका जापान सम्मान करेगा।

सन् 1873 में, जापानी सरकार ने चीन की इस स्वीकृति के साथ र्‍यूक्यू वासियों के जापानी नागरिक होने की पुष्टि कर दी कि जापान को दक्षिणी फारमूसा (ताईवान) में एक आदिवासी जनजाति के हाथों कुछ र्‍यूक्यू वासियों की हत्या के लिये हरजाना पाने का अधिकार था। इस स्वीकृति को जापान ने र्‍यूक्यू द्वीपों पर चीन के दावों का परित्याग भी माना। टोक्यो में अमेरिकी मंत्री, दें लोंग, ने भी इस विवेचन को स्वीकार किया। इसलिये जब जापान ने फारमूसा में एक अभियान दल भेजा तो चीन ने उसे सैनिक चुनौती नहीं दी। वास्तव में, अक्तूबर 1874 में, पीकिंग में अंग्रेज मंत्री, टॉमस वेड, की मध्यस्थता से, चीनी विदेश मंत्री ने पीकिंग में एक समझौते पर हस्ताक्षर किये जिसमें अभियान दल के अधिकारपूर्ण उद्देश्य को स्वीकार किया गया था। इस तरह र्‍यूक्यूवासियों को जापानी नागरिकों के रूस में मान्यता दे दी गयी। इसके अलावा चीन ने हरजाने के तौर पर 500,00 ताएल भी देने का वायदा किया जिसका पाँचवां हिस्सा मारे-गये जापानियों (र्‍यूक्यूवासियों) के परिवारों के लिये तुरंत दे दिया गया। अंग्रेज, मंत्री, टॉमस वेड ने, इस समझौते पर हस्ताक्षर करके यह गारंटी दी कि चीन इस राशि का भुगतान करेगा। समझौते में "जापान के लोग" के अलावा र्‍यूक्यूवासियों का और कोई हवाला नहीं था। इस समझौते पर हस्ताक्षर करते समय चीन को यह आभास नहीं हुआ कि वह इन द्वीपों पर जापान की प्रभुसत्ता को स्वीकार रहा था। 1879 में, चीन ने ओकीनावा प्रांत में इन द्वीपों को शामिल किये जाने का विरोध किया, लेकिन अंतर्राष्ट्रीय कानून के तहत उसकी स्थिति कमजोर थी। चीन ने इस मसले में अमेरिका से मध्यस्थता करने को कहा। राष्ट्रपति ग्रांट ने सुझाव दिया कि चीन और जापान इस मुद्दे पर सीधे बातचीत करें और एक समझौते के समाधान को स्वीकार करें। जापान ने प्रस्ताव रखा कि र्‍यूक्यू द्वीपों के धुर दक्षिणी समूह, अर्थात् साकीशिमा समूह, को चीन को दे दिया जाये। उसके बदले में, जापान ने यह आग्रह किया कि 1871 की संधि में संशोधन करके सबसे अनुकूल राष्ट्र संबंधी प्रावधान को शामिल किया जाये जिससे जापान को वे ही विशेषाधिकार मिलें जो पश्चिमी ताकतों को प्राप्त थे। चीन की प्रतिक्रिया डावांडोल रही, एक बार तो उसने जापान के प्रस्ताव को मान लिया और बाद में यह कहकर उसे अस्वीकार कर दिया कि इस सारे मामले को विदेश मंत्रालय से उत्तरी और दक्षिणी-व्यापार अधीक्षकों को हस्तांतरित कर दिया गया था। यह प्रकट था कि चीन ऐसी किसी संधि पर हस्ताक्षर करना नहीं चाहता था जिससे कि उन द्वीपों पर प्रभुसत्ता जापान के हाथों में पहुंच जाये। 1881 में, पीकिंग में अमेरिकी मंत्री को सूचित किया गया कि अधिक से अधिक वे ऐसी संधि पर हस्ताक्षर करेंगे जिसमें चीन और जापान दोनों की ओर से र्‍यूक्यू द्वीपों की स्वाधीनता की गारंटी दी जाए। फिर भी, इस मुद्दे को अधर में लटकता छोड़ कर भी, चीन इन द्वीपों पर जापान के वास्तविक कब्जे को नहीं रोक पाया। जापान ने अब दुबारा बातचीत करने से भी इंकार कर दिया था। जापान ने बिना किसी प्रत्यक्ष युद्ध के द्वीपों पर कब्जा कर लिया लेकिन इस सौदेबाजी में उसने चीन की शत्रुता मोल ले ली। चीन को जापानी अधिकारियों की अशिष्टता और अंतर्राष्ट्रीय कानून में पश्चिमी प्रावधानों का पालन करने की उनकी हठ से भी चिढ़ हुई। चीन अब जापान के सैनिक तंत्र के प्रति भी संदेह रखने लगा था।

18.2.3 बोनिन द्वीप समूह- (ओगासावारा)

टोक्यो से 500 मील दक्षिणपूर्व में स्थित यह द्वीप समूह-जापान का हिस्सा रहा लेकिन इसका उपयोग केवल निर्वासित राजनीतिक अपराधियों के लिये किया जाता था। इन द्वीपों पर 1827 में अंग्रेजों ने और 1853 में अमेरिकियों ने दावा किया। लेकिन, उनमें से किसी ने भी दावे पर जोर नहीं दिया और जापान ने आगे बढ़कर जापानियों को इन द्वीपों पर बसा दिया। 1873 में, अमेरिकी विदेश मंत्री, हैमिल्टन फिश, ने यह स्पष्ट किया कि इन द्वीपों को अमेरिकी क्षेत्र के रूप में कभी मान्यता प्राप्त नहीं रही। फिश ने दूसरी पश्चिमी ताकतों

को भी प्रेरित किया कि वे इन द्वीपों को जापानी क्षेत्र के तौर पर मान्यता दे। बोनिन द्वीपों को 1880 में टोक्यो प्रांत में शामिल कर लिया गया।

बोध प्रश्न 1

1) जापान ने र्‍यूक्‍यू द्वीपों पर अपनी प्रभुसत्ता को कैसे बढ़ाया? दस पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) बोनिन द्वीपों को जापान में कब शामिल किया गया? दस पंक्तियों में समझाइये कि यह कैसे संभव हुआ।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

3) शिमोदा की संधि के महत्व को समझाइये। पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

....

....

....

....

....

18.3 कोरिया का मसला

कोरिया की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह जापान और एशियाई मुख्यभूमि के बीच भूमि सेतु या जमीनी पुल का काम करता है। उन्नीसवीं शताब्दी में कोरिया एक स्वाधीन देश था। उसका अपना राजा था और अपना अलग शासन था। लेकिन क्योंकि कोरिया चीन और जापान दोनों को नजराना या कर देता था, इसलिये ये दोनों ही राष्ट्र कोरिया में विशेष रुचि रखते थे और एक-दूसरे को वहाँ से अलग करना चाहते थे। लेकिन कई शताब्दियों तक कोरिया ने जापान की अपेक्षा चीन से अधिक निकट के संबंध रखे। 1872 के प्रारंभ

में, जापान ने कोरिया के साथ अपने संबंधों को चीन की बराबरी पर रखना चाहा, लेकिन उसे झिड़क दिया गया। इसके बाद कोरिया में रह रहे कई जापानी नागरिकों पर हमला हुआ। जापान की मान-मर्यादा को बरकरार रखने और जापानी दूतों के साथ अपमानजनक व्यवहार के लिये कोरिया से बदला लेने के उद्देश्य से साइगो ताकामोरी कोरिया में एक अभियान दल भेजना चाहता था। साइगो को विश्वास था कि नयी-नयी भर्ती की गयी सेना को अभियान में सफलता मिलेगी। साइगो इस अभियान को जापान के लिये अपनी सीमाएँ बढ़ाने का एक अवसर भी मान कर चल रहा था। बेदखल सैमुराई वर्ग को भी संभावनाओं की खोज के लिये नये क्षेत्र दिये जा सकते थे। साइगो इस बात को अच्छी तरह जानता था कि ऐसे किसी भी अभियान का नतीजा रूस के साथ बैर होगा, लेकिन वह यह जोखिम भी उठाने को तैयार था। साइगो को अपने नेतृत्व में इस अभियान के लिये अनुमोदन तो मिल गया, लेकिन अभियान दल को भेजा नहीं गया। जो इवाकुरा मिशन यूरोप और अमेरिका गया हुआ था, उसने इस निर्णय को रद्द करवा दिया। ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि इस मिशन के सदस्यों ने विदेशों में जो कुछ देखा उसके आधार पर उन्हें विश्वास हो गया था कि प्राथमिकता आंतरिक पुनर्निर्माण को दी जानी चाहिए और उस समय कोई भी विदेशी अभियान हाथ में नहीं लिया जाना चाहिये। वे यह भी महसूस करते थे कि जापान युद्ध का आर्थिक बोझ नहीं उठा पायेगा। इसके अलावा, वे यह भी महसूस करते थे कि यदि जापान ने कोरिया में ऐसा कोई साहसिक अभियान भेजा तो, पश्चिमी ताकतें हस्तक्षेप के लिये आयेंगी और यह स्थिति जापान के हित में नहीं होगी। अभियान दल भेजने के निर्णय को रद्द किये जाने पर साइगो और अन्य नेताओं ने त्याग पत्र दे दिये। इसके और भी परिणाम हुए।

अ) सैगो

इवाकुरा पर भी उस समय हमला हुआ जब वह शाही महल के प्रांगण से बाहर आ रहा था। हमलावरों की पहचान उन लोगों के रूप में हुई। (या हमलावर वे ही लोग निकले) जो कोरिया को अभियान दल न भेजे जाने के सरकार के निर्णय से असंतुष्ट थे। सागा में एतो शिम्पे के नेतृत्व में एक खुला विद्रोह हुआ। शिम्पे सरकार से अलग हो चुका था। विद्रोह को तो जल्दी ही दबा दिया गया, लेकिन सैमुराई के असंतोष को देखकर सरकार चौकन्नी हो उठी। वास्तव में, असंतुष्ट सैमुराई वर्ग को आंशिक रूप से संतुष्ट करने के लिये ही एक अभियान दल फारमूसा में जापानी प्रभुत्व कायम करने के लिये भेजा गया। साइगो ताकामोरी के छोटे भाई साइगो त्सुगुमिची ने फारमूसा अभियान बल का गठन और नेतृत्व किया। फारमूसा अभियान के सफलतापूर्ण परिणामों से नेताओं को यह पता चला कि विदेशी अभियान यदि सही समय पर सावधानी से गणना करके और उचित ढंग से सीमित हो तो और उसे पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय फार्मूला में उचित ठहराया जा सके तो वह अनुचित रूप से जोखिम भरा नहीं होता और उससे देश के आंतरिक मामलों को और भी संभाला जा सकता है।'' लेकिन कोरिया में कोई अभियान भेजने का प्रयास करने का समय अभी नहीं आया था और बहुत जोखिम भरा भी था।
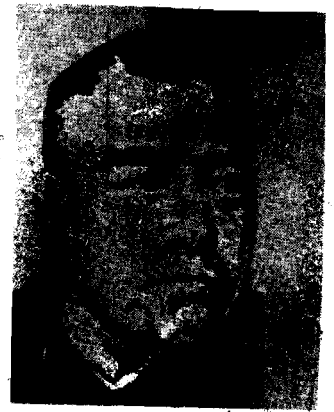
सन् 1875 में, जापान ने कोरिया के साथ वही प्रक्रिया अपनायी जो पश्चिमी ताकतों ने अपनाई थी, अर्थात् कोरियाई तट पर नौसैनिक बल का प्रदर्शन करके और राजनयिक स्तर की बातचीत करके संधि की मांग करो। लेकिन उस वर्ष तो इस उद्देश्य में जापान को सफलता नहीं मिली। अगले वर्ष चीन ने कोरिया को यह सलाह दी कि वह जापान के साथ कूटनीतिक (राजनीतिक स्तर की) बातचीत करे। चीन जापान की सैनिक शक्ति के प्रदर्शन के परिणामस्वरूप पहले ही र्यूक्यू द्वीपों में जापान को रियायतें देने को सहमत हो चुका था। जापान और कोरिया के बीच 1876 में हुई कांगवा की संधि में जापान के लिये दो बंदरगाह खोल दिये गये और उसे आंशिक क्षेत्रातीत अधिकार दे दिये गये। उसके बदले में जापान ने कोरिया को ऐसे स्वाधीन प्रभुसत्ता-संपन्न राज्य के रूप में मान्यता दे दी जिसके अधिकार जापान के ही समान थे। लेकिन चीन ने इस संधि से कोरिया का चीनी प्रभुत्व से मुक्त होना नहीं माना। न ही स्वयं कोरिया ने यह स्वीकार किया कि वह एक स्वतंत्र विदेशी नीति चला पाने में सक्षम था। यह बात तब सामने आयी जब अमेरिका ने कोरिया के साथ संबंध शुरू करने का प्रयास किया।

1882 में अमेरिका के साथ कोरिया की जो शूफेल्ट संधि हुई उसमें हर तरह से बराबरी की शर्तें रखी गयीं। लेकिन अमेरिका ने स्पष्ट तौर पर कोरिया को चीन की अधीनता वाला राज्य ही बताया। इस तरह चीन के संदर्भ में कोरिया की स्थिति का मुद्दा ज़ापान के संदर्भ में उसकी स्थिति से भिन्न था। कांगवा की संधि संपन्न करते समय जापान का यह इरादा नहीं था।

कोरिया के आंतरिक षड़यंत्रों ने चीन और जापान के साथ उसके संबंधों को और भी जटिल कर दिया। दो परस्पर विरोधी गुट थे :

- कमसिन राजा के पिता और प्रतिशासक (रीजेंट), ताएवोनकुन, के नेतृत्व वाला गुट रूढ़िवादी, विदेश-विरोधी और चीन-समर्थक था।
- सन् 1873 के बाद जब राजा व्यस्क हुआ तो उस पर रानी और मिंग परिवार का नियंत्रण हो गया। इस गुट की स्थिति प्रगतिशील, विदेशी समर्थक और जापान समर्थक थी।

जुलाई 1882 में, ताएवोनकुन ने एक जापानी-विरोधी दंगा भड़काया। इस गड़बड़ी में राजा और रानी की हत्या होते-होते बची। लेकिन जापानी मंत्री को अंग्रेजों की मदद से जापान को भागना पड़ा। जापान ने दूतावास की रक्षा करने के लिये कुमुक भेजी। चीन ने भी ऐसा ही किया। ताएवोनकुन को चीनियों ने पकड़ लिया और इस आधार पर उसे ले गये कि उसने चीनी सम्राट के विरुद्ध विद्रोह किया था। जब स्थिति सामान्य हो गयी और राजा अस्थायी नियंत्रण स्थापित कर सका तो उसने विद्रोह के लिये जापान से क्षमा मांगी और जापान को हुए नुकसान के लिये हरजाना दिया और दूतावास में गार्ड बढ़ाने की अनुमति भी दे दी। वैसे, दो वर्ष बाद, जापान ने हरजाने की बकाया राशि को रद्द कर दिया।

कोरिया की स्थिति बिगड़ी ही, क्योंकि चीन और जापान दोनों की सेनाएँ इस अंदेशे से मोर्चा संभाले हुई थीं कि राजा पर अधिकार को लेकर कभी भी झड़प हो सकती थी। चीन अपनी भी इस अवधारणा को स्वीकार करने को तैयार नहीं था कि कोरिया एक स्वाधीन और प्रभुसत्ता संपन्न राज्य था। दरबार में षड़यंत्र चलते रहे, क्योंकि एक गुट अभी भी चीन के साथ सहयोग कर रहा था।

जापानी उदारवादियों ने कोरिया के मसले में अपने आपको लिप्त रखना जारी रखा। इसका आंशिक कारण था कोरिया में फूट रहे प्रगतिशील आंदोलन और इस आंदोलन के नेताओं के साथ सहानुभूति का होना, और आंशिक कारण था यह आशा कि हमें योगदान करके वे जापान में उदारवादी लक्ष्यों की प्राप्ति में योगदान करेंगे।

ब) फुकूजावा युकुची

उदारवादियों और जापानी सरकार के बीच कोरिया के मुद्दे को लेकर कोई स्पष्ट मतभेद नहीं था। जापानी सरकार उदारवादी-सिद्धांतों के व्यावहारिक रूप में विस्तार में रुचिशील नहीं थी। वह तो इन्हें ऐसी औषध के रूप में देखती थी जो कोरिया में व्याप्त पिछड़ेपन, अस्थायित्व, बैर और अनिश्चितता की स्थितियों के विष को उतार सकती थी, क्योंकि ये स्थितियाँ जापान की सुरक्षा के लिये खतरा हो सकती थीं।

लगभग 1881 से, फुकुजावा युकिची और अन्य जापानी उदारवादी कोरियाई-सुधारकों के निकट संपर्क में थे। उनकी गतिविधियाँ तब तक बढ़ती गयीं और वे सिओल विद्रोह के दौरान चरम सीमा पर पहुँच गई। 1884 में कोरिया की इंडिपेंडेंस पार्टी के नेताओं, किम ओंक-किउन और पाक युंग ह्यो, ने जिन्हें जापान के उदारवादियों और जापानी दूतावास का समर्थन प्राप्त था, रातों-रात सरकार का तख्ता पलट दिया। राजा के कई मंत्रियों को मार डाला गया। इसके बदले में कोरियाईयों ने जापानी दूतावास पर कब्जा करने का प्रयास किया जिससे जापानी नागरिकों और मंत्री को सिओल से इंचोन भाग जाना पड़ा। कोरिया के राजा ने चीनी खेमे मे शरण ली और क्रांतिकारी नेता जापान भाग गये। एक बार फिर, जापान ने कोरिया के साथ अलग-अलग बातचीत करके उससे क्षमा मांगने और हरजाना देने के लिए कहा और, क्रांतिकारी नेताओं को रिहा करने से इंकार कर दिया। इस समय, कोरिया में नियुक्त किये गये चीनी रेज़िडेंट, युआन शी काई, ने राजा से दोस्ती गांठ ली और जापान का विरोध, करने में कोरियाईयों की मदद की। बिगड़ती हालत को केवल जापान और चीन के बीच बातचीत से या युद्ध के जरिये सुधारा जा सकता था। जापान और चीन दोनों ने ही बातचीत के रास्ते को चुना इतो हिरोबुमी ने चीन जाकर वाइसराय ली हुंग चांग, से बात की। इसके परिणामस्वरूप मार्च 1883 में त्येनजिंग में ली-इतो समझौते पर हस्ताक्षर हुए। इस समझौते के मुख्य बिंदु थे :

स) इतो हीरोबूमी

1) चीन और जापान दोनों चार महीने के अंदर कोरिया से अपनी सेना हटा लेंगे।

2) यदि कोरिया में किसी गड़बड़ी की स्थिति में इनमें से किसी भी देश के लिये वहाँ सेना भेजना आवश्यक हुआ तो, वह दूसरे देश को इसकी सूचना देने के बाद ही ऐसा करेगा।

3) कोरियाई सेना के गठन या प्रशिक्षण में किसी भी चीनी या जापानी की नियुक्ति नहीं की जाएगी।

जापानी सेनाओं की वापसी से तथा इस समझौते के लागू होने से कोरिया को लेकर चीन और जापान के बीच के तनाव समाप्त हो गये। कोरिया पर चीन का प्रभुत्व होगा या जापान का, इस मसले का समाधान तो नहीं हुआ, लेकिन उसे कुछ समय के लिये ताक पर धर दिया गया। उधर कोरिया के भविष्य में रुचि रखने वाला उस स्थिति को गौर से देख रहा था और स्वयं अपना प्रभाव जमाने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। रूस ने यह प्रस्ताव रखा कि वह कोरियाई सैनिकों के प्रशिक्षण के लिये अपने अधिकारी देगा और उसके बदले में वोनसन के गर्म पानी के बंदरगाह का इस्तेमाल करेगा। लेकिन चीन और जापान दोनों के विरोध ने इस प्रस्ताव को स्वीकृत नहीं होने दिया। रूसी इरादों के प्रतिशोध में, इंग्लैंड ने दक्षिण कोरिया के कुछ छोटे द्वीपों पर कब्जा कर लिया लेकिन 1887 में अपनी सेनाएँ वहाँ से हटा लीं। इसलिये, जापान को एक ओर तो कोरिया में चीन के प्रभाव को समाप्त करने में सफलता मिली, और दूसरी ओर वह कोरिया में रूसी घुसपैठ को रोकने में सफल रहा। लेकिन इसके साथ ही, जापान कोरिया को चीन की ओर से एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में मान्यता नहीं दिलवा सका। फिर भी, एक संकट 1893 तक तो टल ही गया।

18.4 असमान संधियों में संशोधन

पश्चिमी ताकतों को वाणिज्यक संबंधों के अधिकार देने वाली संधियों में उन्हें क्षेत्रातीत अधिकार भी दिये गये थे, अर्थात् विदेशी नागरिकों को ये अधिकार दिये गये थे कि वे जापान की धरती पर जापानियों के जीवन और उनकी संपत्ति को प्रभावित करने वाले जो अपराध करेंगे उनके लिये उन पर उनकी ही अदालतों में और उनके ही कानूनों के अनुसार मुकदमा चलेगा। जापान की आयात-निर्यात पर अपनी शुल्क दरें निश्चित करने की स्वतंत्रता भी 5 प्रतिशत के समान सीमा शुल्क निर्धारित होने से समाप्त हो गयी थी। संधियों में संशोधन को लेकर सरकारी और निजी तबकों में बहस मेजी पुर्नस्थापन के तुरंत बाद ही शुरू हो गयी।

लेकिन इवाकुरा मिशन ने इस बात को महसूस कर लिया था कि नागरिक और आपराधिक संहिताओं में संशोधन करने के बाद ही पश्चिमी ताकतों को क्षेत्रातीत अधिकार समाप्त करने को प्रेरित किया जा सकता था। लेकिन, जनता इसे समाप्त करने के लिये लगातार मांग कर रही थी क्योंकि यह जापान की प्रतिष्ठा के विरुद्ध था। 1873 में ही, तत्कालीन वित्तमंत्री, ओकुमा शिगेनोबू, यह मान चुका था कि सरकार के पास आयात-निर्यात के शुल्क निश्चित करने का स्वतंत्र अधिकार होना चाहिए।

वास्तव में, 1873 में कोरियाई अभियान योजना का विरोध करते समय, ओकुबो तोशीमिची ने स्पष्ट कहा था : "पहली बात है संधियों में संशोधन करना, कोरियाई व्यापार की बात इसके बाद आती है।" उसका मानना था कि यदि संधियों में संशोधन नहीं किया गया तो, इंगलैंड और फ्रांस आंतरिक असुरक्षित स्थिति का बहाना लेकर सेनाएँ भेज देंगे। जापान ने लगातार कई वर्षों तक बातचीत के जरिये संधियों में संशोधन का प्रयास किया, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। वैसे उसे विदेशी ताकतों के साथ बातचीत करने के ढंग का अनुभव हो गया। 1880 में, विदेश मंत्री इनोवे काओरू, ने क्षेत्रातीत अधिकारों और शुल्क-दरों के आंशिक संशोधन का प्रस्ताव तैयार किया और उसे विदेशी ताकतों के आगे पेश किया। इसका कोई अनुकूल उत्तर नहीं मिला, लेकिन टोक्यो स्थित डच मंत्री ने इस गोपनीय प्रस्ताव को "जापान हेरल्ड" अखबार को दिया, और जनता में इसकी व्यापक सरकार विरोधी प्रतिक्रिया हुई। अंग्रेजी, विदेश मंत्री ने लंदन स्थित जापानी मंत्री, मोरी आरीनोरी, से संपर्क किया और संशोधित-प्रस्तावों को बातचीत के आधार के रूप में स्वीकार करने से इंकार कर दिया। वास्तव में बाहरी देशों में इंग्लैंड ने सबसे कठोर रवैया अपनाया। 1884 में, अंग्रेजी सरकार ने स्पष्ट कह दिया कि संधियों में संशोधन पश्चिमी कानूनी संहिताएँ अपनाने पर आश्रित था। जापान पहले ही संशोधन की प्रक्रिया को तेज करने के प्रयास कर चुका था। एक फ्रांसिसी सलाहकार गुस्ताव बोइसीनादे, की सहायता दंड संहिता और आपराधिक प्रक्रिया-संहिता में संशोधन करने के लिये ली गयी। जर्मन कानून विशेषज्ञ, हर्मन रेसलर, की सहायता से एक वाणिज्य संहिता तैयार की गयी। अमेरिका इन प्रयासों से

प्रभावित हुआ और असमान संधियों में संशोधन के प्रति उसका दृष्टिकोण अनुकूल था, लेकिन दूसरी सरकारों का दावा था कि प्रयास अभी भी अपर्याप्त थे।

पश्चिमी ताकतों के साथ असमान संधियों को समाप्त करने के लिये बातचीत की शुरुआत मई 1, 1886 को हुई। इस बातचीत का जो निष्कर्ष निकला उसकी सामान्य रूपरेखा इस तरह थी :

1) जापान न्यायिक अधिकार मनवाने के लिये संस्थाओं का गठन करेगा। वह यूरोपीय सिद्धांतों के अनुसार एक अपराध संहिता, एक वाणिज्य संहिता और एक वाणिज्यिक प्रक्रिया संहिता भी बनायेगा।

2) विदेशियों से संबंधित दीवानी मुकदमों में अधिकांश न्यायाधीश विदेशी होंगे।

3) अपराधिक मामलों में प्राथमिक जाँच-पड़ताल विदेशी न्यायाधीश करेंगे।

4) जिस विदेशी को किसी जापानी अदालत से मृत्यु दंड मिलेगा, उसे उसके राष्ट्र को सौंप दिया जायेगा, और उस पर उस राष्ट्र के कानूनों के अनुसार मुकदमा चलेगा।

वास्तव में, इनका अर्थ बुनियादी तौर पर यह निकलता था कि क्षेत्रातीत अधिकार वैसे ही बने रहेंगे। संधि संशोधन का मसौदा जैसे ही जनता को पता चल गया, सरकारी तबकों और आम जनता दोनों में इसका विरोध हुआ। विदेशी और जापानी-न्यायाधीशों वाली मिश्रित अदालतों की अवधारणा कतई स्वीकार नहीं की गयी। यह महसूस किया गया कि विदेशियों को भूमि-स्वामित्व और उत्खनन के अधिकार देने से जापान के प्राकृतिक संसाधानों पर विदेशियों का कब्जा हो जायेगा। जापान के किसी भी हिस्से में विदेशियों के बिना किसी पाबंदी के रहने और उनके पूरे जापान में यात्रा करने की स्वतंत्रता का भी विरोध हुआ। स्वयं सरकार के अंदर ही, एक विचार यह था कि संधि में संशोधन को 1890 में राष्ट्रीय विधान सभा की स्थापना के बाद तक स्थगित रखना बेहतर होगा। दूसरों का सोचना था कि संधि संशोधन को स्थगित करने के बजाए रद्द ही कर दिया जाना चाहिये। यहाँ तक कि फ्रांसिसी सलाहकार, बोइसीनादे, ने भी संधि संशोधन विधेयक का विरोध किया। उसका कहना था कि पहले की संधियों मे इस तरह संशोधन करने की अपेक्षा उन्हें बरकरार रखना बेहतर होगा। उसका मानना था कि क्योंकि इस विधेयक में विदेशियों को जापानियों की तुलना में बेहतर सुरक्षा दी गयी थी, इसलिये इसे लागू करने से जनता का असंतोष गंभीर गड़बड़ी का रूप लेकर भड़क सकता था।

सरकार के अंदर और जनता में भी, इस विधेयक का इतना जबरदस्त विरोध था कि अंत में, 20 जुलाई 1887, को सरकार ने विदेशी मंत्रियों को संधि संशोधन समझौते को अनिश्चित काल के लिये स्थगित करने की सूचना भेज दी। इस मुद्दे का एक और परिणाम यह हुआ कि विदेश मंत्री इनोवे को त्यागपत्र देना पड़ा।

सरकार ने प्रस्तावों पर बातचीत जारी रखी और उन लोगों के विरुद्ध कड़े-कदम भी उठाये जो परेशानी खड़ी करके सरकार के लिये संधि पर बातचीत करने में अरुचिकर स्थितियाँ पैदा कर रहे थे। फिर भी 1889 में, तत्कालीन विदेश मंत्री, ओकुमा शिगेनोबू, पर उस समय बम फेंका गया जब वह एक बैठक से लौट रहा था। इस हमले में शिगेनोबू की एक टांग जाती रही। इससे मसले का हल कुछ और वर्षों के लिये स्थगित हो गया। फिर भी, विधान सभा में सरकार की इस मामले का हल न ढूंढ पाने के लिये तीखी आलोचना हुई। प्रधानमंत्री इतो हिरोबूमी ने विधान सभा के इस रवैये का बहाना लेकर उसे भंग कर दिया। सरकार ने कानून और व्यवस्था भंग करने वालों के विरुद्ध सख्त कदम उठाये, लेकिन, जनमत ने सरकार को यह अहसास करवा दिया कि उसे असमान संधियों की किश्तवार समाप्ति को नहीं, बल्कि उनकी पूर्ण समाप्ति को अपना लक्ष्य बनाना होगा। अंत में, 1893 में इस मुद्दे पर इंग्लैंड के साथ बातचीत में कुछ प्रगति हुई 1894 में, विदेशी मंत्री, आओकी शुजो, ने लंदन पहुंचकर 16 जुलाई, 1894 को एक संधि पर हस्ताक्षर किये। इस संधि में, नयी संहिताओं के लागू होने की दिशा में, क्षेत्रातीत अधिकारों को समाप्त कर दिया गया। इस तरह विदेशी बस्तियों को मिले विशेष अधिकारों का खात्मा हो गया। इन परिवर्तनों को 1899 से प्रभावी होना था। लेकिन, शुल्क दरों का नियंत्रण और बारह वर्षों के लिये ज्यों का त्यों रहना था। इसका अर्थ यह था कि जापान को शुल्क दरों पर पूरी स्वायत्तता फिर 1911 में ही हासिल हो पायी। अन्य ताकतों के साथ भी बाद में ऐसी ही संधियाँ हुई। इस प्रक्रिया से जापान को पश्चिमी ताकतों के साथ समानता हासिल करने के उसके लक्ष्य की दिशा में एक कदम और आगे बढ़ने में मदद मिली।

बोध प्रश्न 2

1) कांगवा की संधि के पीछे क्या कारण थे? इसके क्या परिणाम हुए? 15 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

2) ली-इतो समझौता क्या था 10 पंक्तियों में उत्तर दें।

....
....
....
....
....
....
....
....
....
....

3) निम्नलिखित वक्तव्यों में से कौन-से सही (✓) हैं, कौन-से गलत (✗)? निशान लगायें।

i) कांगवा की संधि में जापान के लिये दो बंदरगाहों को खोल दिया गया।

ii) कई शताब्दियों तक कोरिया ने जापान की अपेक्षा चीन के साथ अधिक निकट के संबंध रखे।

iii) 1882 में, ताएवोनकुन ने एक चीन-विरोधी दंगा भड़काया।

18.5 सारांश

इस दौर में विदेश नीति के क्षेत्र में चीन की मुख्य उपलब्धि क्षेत्रातीत अधिकारों को रद्द करना रहा। जापानी प्रभुसत्ता पर लगे प्रतिबंध आंशिक तौर पर हटा लिये गये, लेकिन

उसे शुल्क-दरों की स्वायत्तता 1911 में ही मिल सकी। इस मुद्दे से यह बात सामने आती है कि बाहरी राष्ट्रों के साथ संबंधों ने जापान को पश्चिमी संस्थाओं के अनुरूप अपना आधुनिकीकरण करने की तत्परता और प्रेरणा प्रदान की। विदेशियों को दिये गये विशेष अधिकारों के विरोध में जनता की अप्रसन्नता के खुले प्रदर्शन ने, बातचीतों में उन विशेष अधिकारों की पूर्ण समाप्ति की मांग ने सरकार के हाथ मजबूत किये लेकिन इसके बदले में जनता के साथ सरकार की ओर से सख्ती की गयी। सरकारी नेताओं ने विदेशी ताकतों के साथ द्विपक्षीय और बहुपक्षीय बातचीत की प्रक्रियाओं में अनुभव प्राप्त किया।

जापान को रूस के साथ अपनी सीमाएँ खींचने और र्‍यूक्यू और बोनिन द्वीपसमूहों पर अपने अधिकारों को अंतर्राष्ट्रीय स्वीकृति दिलवाने में भी सफलता मिली। इस संदर्भ में जापान के दावों को बढ़ावा देने में अमेरिका की सलाह और मदद उल्लेखनीय है। लेकिन र्‍यूक्यू द्वीपों के मसले ने जापान और चीन के बीच अविश्वास के बीज बो दिये। इसमें चीन की हार हुई। इसका कारण था जापान का अपनी नवप्राप्त सैनिक ताकत का इस्तेमाल इन द्वीपों पर वास्तविक नियंत्रण के लिये करना, और उसका अपने दावों के समर्थन में पश्चिमी अंतर्राष्ट्रीय कानून का सहारा लेना। लेकिन चीन कोरिया पर अपने अधिकारों को इतनी आसानी से छोड़ने वाला नहीं था। चीन के प्रभुत्व को समाप्त करने की गरज से कोरिया को एक स्वाधीन राष्ट्र घोषित करने के जापान के प्रयासों को सफलता नहीं मिली। कोरिया को लेकर चीन और जापान के बीच झगड़े को 1885 के ली-इतो समझौते के माध्यम से बिना युद्ध के निपटा दिया गया। लेकिन, कोरिया पर अपने-अपने पूर्ण अधिकार के लिये इन दोनों राष्ट्रों ने अपने दावे को कुछ ही समय के लिये छोड़ा था। जैसा कि इकाई 19 में चर्चा की गयी, जापान और चीन के बीच इस मुद्दे पर वास्तव में एक युद्ध हुआ। यह मुद्दा द्विपक्षीय नहीं रह सका, बल्कि इसमें पश्चिमी ताकतों का हस्तक्षेप हुआ जो इस क्षेत्र में जापान के, उसकी सैनिक ताकत के कारण, दावों के प्रति संदेह की दृष्टि रखते थे। जापान ने बहुत जल्दी वास्तविक राजनीति की रोशनी में अपनी विदेश नीतियों को चलाना सीख लिया। यह बात केवल उसकी कोरियाई नीति से ही नहीं, बल्कि सामान्य रूप से भी स्पष्ट हो जाती है। अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संबंध, आंतरिक राजनीतिक मुद्दे और घरेलू अर्थव्यवस्था पर सावधानीपूर्वक चिंतन प्रत्येक कार्यवाही से पहले अनिवार्य थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक के आते-आते जापान को यह विश्वास हो चला था कि एक समान स्तर पाने वाले प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र के रूप में पश्चिमी ताकतों से मान्यता पाने का उसका लक्ष्य चीन के साथ चलकर नहीं पाया जा सकता था। बल्कि चीन के साथ निकट का साथ रखने से पश्चिनी ताकतें उसे भी उन दूसरे एशियाई राष्ट्रों की श्रेणी में डाल देंगी जो पिछड़े हुए थे और अपने आपको आधुनिक बनाने के लिए सकारात्मक कदम उठाने को तैयार नहीं थे। इसलिये, उसे अपने आपको एशिया से "अलग करना" पड़ा ताकि उसके आधुनिकीकरण के प्रयासों को मान्यता मिले।

18.6 शब्दावली

मेजी : जापान के सम्राट मुत्सुहितो का शासकीय नाम

क्षेत्रातीत अधिकार : उस क्षेत्र के स्थानीय कानून का लागू न होना।

प्रतिशासक : वास्तविक राजा के बहुत कमसीन होने या अक्षय होने की स्थिति में राज्य का शासन चलने के लिये नियुक्त व्यक्ति।

ताएल : जापानी मुद्रा।

18.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) देखिये उपभाग 18.2.2

2) देखिये उपभाग 18.2.3

3) देखिये उपभाग 18.2.1

बोध प्रश्न 2

1) देखिये भाग 18.4

2) देखिये भाग 18.4

3) i) ✓ ii) ✓ iii) ✗